श्रीमुनिसोमगणिरचित

कल्पसूत्र लेखन-प्रशस्ति

म. विनयसागर

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समुदाय में कल्पसूत्र का अत्यधिक महत्त्व है। पर्वाधिराज पर्युषणा पर्व में नौ वाचनागर्भित कल्पसूत्र का पारायण किया जाता है और संवत्सरी के दिवस मूल पाठ (बारसा सूत्र) का वाचन किया जाता है। प्रत्येक भण्डारो में इसकी अनेकों प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। अनेक ज्ञान भण्डारों में तो सोने की स्याही, चाँदी की स्याही और गंगा-जमुनी स्याही से लिखित सचित्र प्रतियाँ भी शताधिक प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। केवल स्याही में लिखित प्रतियाँ तो हजारों की संख्या में प्राप्त हैं।

पन्द्रहवी शती के धुरन्धर आचार्य श्री जिनभद्रसूरिने समय की मांग को देखते हुए अनेक जिन मन्दिरों, हजारों जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठाएं की और साहित्य के संरक्षण की दृष्टि से खम्भात, पाटण, माण्डवगढ, देवगिरि, जैसलमेर आदि भण्डार भी स्थापित किए। लेखन प्रशस्तियों से प्रमाणित है कि आचार्यश्री ने न केवल ताड़पत्र और कागज पर प्रतिलिपियाँ ही करवाई थी अपितु अपने मुनि-मण्डल के साथ बैठकर उनका संशोधन भी करते थे। जैसलमेर का ज्ञान भण्डार उनके कार्य-कलापों और अक्षुण्ण कीर्ति को रखने में सक्षम है। जहाँ अनेकों जैनाचार्य, अनेकों विद्वान् और अनेकों बाहर के विद्वानों ने आकर यहाँ के भण्डार का उपयोग किया है। इन्हीं के सदुपदेश से विक्रम संवत् १५०९ में रांका गोत्रीय श्रेष्ठी नरसिंह के पुत्र हरिराज ने स्वर्ण स्याही में (सचित्र) कल्पसूत्र का लेखन करवाया था। इसकी लेखन प्रशस्ति पण्डित मुनिसोमगणि ने लिखी थी। प्रशस्ति ३६ पद्यों में है। इस प्रशस्ति में प्रति लिखाने वाले श्रावक का वंशवृक्ष और उपदेश देने वाले आचार्यों की पट्ट-परम्परा भी दी गई है।

श्री जिनदत्तसूरिजी ने उपकेशवंश में रांका गोत्र की स्थापना की थी। इसी कुल के पूर्व पुरुष जोषदेव हुए, जिन्होंने कि मदन के साथ सपादलक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देश और उकेशपुर (ओसियां) में सुकृत कार्य किए थे । उन्हीं की वंश परम्परा में श्रेष्ठी गजु हुए और उनके पुत्र गणदेव हुआ । गणदेव का पुत्र धांधल हुआ । जो की मम्मण कहलाता था और जिसने मुमुक्षु बनकर पद्मकीर्ति नाम धारण किया था ।

श्रेष्ठी आंबा, जींदा और मूलराज ये चाचा के पुत्र थे और जिन्होंने जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाकर शासनोन्नति का कार्य किया था । उन्होंने ही फुरमान प्राप्त करके संवत् १४३६ में शत्रुंजय आदि तीर्थों का श्री जिनराजसूरि के सान्निध्य में संघ निकाला था । इस संघ में ५०,००० रूपये व्यय हुए थे । धांधल की भार्या का नाम श्री था । उसके दो पुत्र थे- जयसिंह और नृसिंह ।

श्रेष्ठी मोहन के दो पुत्र थे- कीहट और धन्यक । इन्होंने भी शत्रुंजय का संघ निकालकर संघपति पद प्राप्त किया था । इन्होंने ने ही जेसलमेर में अपने बन्धुओं के साथ संवत् १४७३ में जिनमन्दिर और प्रचुर प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई थी । जयसिंह के दो पत्नियाँ थी - सिरू (सरस्वती),....। सरस्वती के दो पुत्र थे - रूपा और थिल्हा । रूप की पत्नी का नाम मेलू और चिपी था । उनका पुत्र नाथू था । नाथू के दो पुत्र राजा और समर थे। थिल्हा के दो पुत्र थे- हरिपाल और हरिश्चन्द्र । हरिपाल के दो पुत्र थे- हर्ष और जिनदत्त । हरिश्चन्द्र का पुत्र था उदयसिंह ।

श्रेष्ठी नरसिंह की भार्या का नाम धीरिणि था । उनके दो पुत्र हुए- भोजा और हरिराज । भोजा की पत्नी का नाम भावल देवी और उसका पुत्र गोधा था । उसके दो पुत्र थे- हीरा और धन्ना ।

श्रेष्ठी नृसिंह का द्वितीय पुत्र हरिराज छत्रधारी था । देवगुरु अरिहंत धर्म का उपासक था और स्वपक्ष का पोषण करने वाला था । हरिराज की दो पत्नियाँ थी- राजू और मेघाई ।

इधर पारख वंशीय कर्ण की प्रिया का नाम कर्णादे था । उसके चार पुत्र हुए- नरसिंह, महीपति, वीरम और सोमदत्त । चार पुत्रियाँ थी । जिसमें तीसरी पुत्री का नाम मेघाई था । जिसका विवाह हरिराज के साथ हुआ था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिराज के तीन पुत्र थे- जीवा, जिणदास और जगमाल। एक पुत्री थी जिसका नाम मणकाई था। जीवराज की पत्नी का नाम कुतिगदेवी था। जिणदास की प्रिया का नाम जसमादे था।

नरसिंह के तीन पुत्र थे- सहसकिरण, सूरा और महीपति। सहसकिरण के दो पुत्र थे- अद्दा और सद्दा। महीपति का पुत्र वच्छराज था। हरिराज का धर्मपुत्र सुभाग था।

धर्मवान हरिराज अपने परिवार सहित तीर्थयात्रा, संघपूजा, जैन धर्म की प्रभावना करता हुआ शोभायमान है।

इधर भगवान महावीर स्वामी के पंचम गणधर पट्टधर सुधर्मा स्वामी हुए और उन्हीं की वंश परम्परा में हरिभद्रसूरि आदि प्रभाविक आचार्य हुए। शासन का उद्योत करने वाले उद्योतनसूरि के शिष्य वर्द्धमानसूरि हुए। इनके शिष्य जिनेश्वरसूरि ने पत्तन नगर में दुर्लभराज की राज्य सभा में खरतर विरुद प्राप्त किया था। उनके पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए तत्पश्चात् नवाङ्गी वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि हुए। उनके शिष्य सूरिशिरोमणी जिनवल्लभसूरि हुए। तदनन्तर युगप्रधान पदधारक जिनदत्तसूरि हुए। तत्पश्चात् परम्परा में श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनपतिसूरि, श्रीजिनेश्वरसूरि, श्रीजिनप्रबोधसूरि, श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनकुशलसूरि, श्रीजिनपद्मसूरि, श्रीजिनलब्धिसूरि, श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनोदयसूरि और जिनराजसूरि हुए। इनके पट्टधर पूर्णिमा चन्द्र के समान, सूर्य की किरणों को धारण करनेवाले श्रीजिनभद्रसूरि है। उन्हीं के उपदेश से हरिराज ने स्वर्ण स्याही में यह कल्पसूत्र सन् १५०९ में लिखवाया और इसकी प्रशस्ति मुनिसोमगणि ने लिखी है।

इस प्रशस्ति का महत्त्व इसीलिए भी बढ़ जाता है कि जैसलमेर में जिसको लक्ष्मणविहार कहा जाता है, जिसके दूसरे शिलालेख की प्रशस्ति उपाध्याय जयसागर ने लिखी है। तदनुसार रांका गोत्र में जोषदे और आसदेव की परम्परा में धांधल हुए। इस प्रशस्ति में इस परम्परा के प्रतिष्ठित महनीय सभी श्रेष्ठियों के नाम और उनके पुत्रों का उल्लेख है। ये नरसिंह मम्माणी कहलाते और उनके पुत्र जयसिंह के पुत्र भोज और हरिराज ने इस जेसलमेर तीर्थ पर लक्ष्मण विहार में संवत् १४७३ में श्री जिनवर्द्धनसूरि के सान्निध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अपने परिवार सहित यह प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित किया था। (जैसलमेर का यह शिलालेख मेरे द्वारा सम्पादित **प्रतिष्ठा लेख संग्रह**, लेखांक १४७, पृष्ठ ३४ देखें।)

इसी प्रकार इसी हरिराज द्वारा प्रतिष्ठित अन्य मूर्तियाँ भी प्राप्त हैं, जो निम्न हैं :-

(२४१) आदिनाथ-पञ्चतीर्थी:

९०।सं० १४९३ वर्षे फाल्गुन वदि १ बुधे ऊकेशवंशे श्रेष्ठि गोत्रे श्रे० मम्मणसंताने श्रे० नरसिंह भार्या धीरिणि:। तयो: पुत्र भोजा हरिराज सहसकरण सूरा महीपति पौत्र गोधा इत्यादि कुटुम्बं॥ तत्र श्रे० हरिराजेन आत्मनस्तथा भार्या मेघु श्राविकाया: पुत्री कामण काई-प्रभृतिसंततिसहिताया स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिम्बं कारितं खरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिभि: प्रतिष्ठितम्॥

(७४३) आदिनाथ-पञ्चतीर्थी:

संवत् १५२८ वर्षे आषाढ़ २ दिने ऊकेशवंशे रांकागोत्रे श्रे० नरसिंह भा० धीरणि पुत्र श्रे० हरिराजेन भा० मघाई पु० श्रे० जीवा श्रे० जिणदास श्रे० जगमाल श्रे० जयवंत पुत्री सा० माणकाई प्रमुख परिवारयुतेन श्री आदिनाथबिम्बं पुण्यार्थं कारयामासे प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्रीश्रीश्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीश्रीश्रीजिन-चन्द्रसूरिभि:॥

(८३६) धर्मनाथ पञ्चतीर्थी:

सं० १५३६ वर्षे फागण वदि .... दिने श्रीऊकेशवंशे रांकागोत्रे श्रे० जेसिंघपुत्र श्रे० घिल्हा भा० करणु पु० श्रे० हरिपाल भा० हासलदे पुत्र श्रे० हर्षा भ्रा० जिणदत्तेन भा० कमलादे पुत्र सधरेण सोनापालादि परिवारेण स्वपितृपुण्यार्थं श्रीधर्मनाथबिम्बं का० प्रति० श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीजिनचन्द्रसूरिभि:॥

(८३७) नमिनाथ-पञ्चतीर्थी:

सं० १५३६ वर्षे फा० वदि ..... दिने ऊकेशवंशे रांकागोत्रे श्रे० जेसिंघपुत्र श्रे० घिल्हा भार्या करणू पु० श्रे० हरिपाल भा० हांसलदे पुत्र श्रे० हर्षा भा० ..... श्रे० जिणदत्तेन भा० कमलादे पु० सधारण- सोनापालादिपरिवारेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वमातृपुण्यार्थं श्रीनमिनाथबिम्बं का० प्र० श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिपट्टे श्रीजि[न]चन्द्रसूरिभिः ॥

प्रतिष्ठासोमगणि

श्री जिनभद्रसूरि के शिष्यों में महोपाध्याय सिद्धान्तरुचि के शिष्य साधुसोमगणि आदि प्रसिद्ध हैं। सोमनन्दी देखकर मैंने यही सोचा कि ये भी जिनभद्रसूरि के पौत्र शिष्य होंगे। इसीलिए खरतरगच्छ साहित्य कोश, क्रमांक २२३२ और २७८० में मैंने सिद्धान्तरुचि का ही शिष्य अंकित किया है। किन्तु उपाध्याय श्री भुवनचन्द्रजी महाराज ने सितम्बर २००६ में केवल द्वितीय पत्र की फोटोकॉपी भेजी थी, जिसमें मुनिसोम की राजस्थानी भाषा में रचित लघु कृतियाँ थी। इन लघु कृतियों में एक कृति में स्पष्ट लिखा है- "कमलसंजमउवझाय सीस करइ नितु सेव... कमलसंजमउपझाय पदपंकजए कवितु मुनिमेरु इम कहइ।" अतएव यह स्पष्ट है कि मुनिमेरु कमलसंयमोपाध्याय के शिष्य थे जिन्होंने ने कि उत्तराध्ययन सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि टीका १५४४ में की थी। हाँ, दीक्षा अवश्य ही सोमनन्दी के नाम से श्री जिनभद्रसूरि ने ही प्रदान की थी। इस सूचना के लिए मैं उपाध्याय भुवनचन्द्रजी का कृतज्ञ हूँ।

खरतरगच्छ साहित्य कोश में मुनिसोमगणि रचित दो कृतियों का उल्लेख हुआ है। क्रमांक २२३२ पर रणसिंहनरेन्द्रकथा, रचना संवत् १५४० तथा क्रमांक २७८० पर संसारदावा पादपूर्ति स्तोत्र।

भाषा कृतियों में उपाध्याय श्री भुवनचन्द्रजी महाराजने १६वीं शताब्दी लिखित जो द्वितीय पत्र भेजा है उसके अनुसार राजस्थानी भाषा की लघुकृतियाँ ओर हैं :-

१. ऋषभदेव फाग, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, अपूर्ण, गा.-१७, अ. उपाध्याय भुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

२. भ्रमर गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-अंधकारुगमिले प्रगट प्रकाशे, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. विरक्ति कारण गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, गा.-७, आदि-पुनिम रजनी करु कपमाला, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

४. आदिनाथ गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-सकल मंगल कारणऊ रे, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

५. जीरावला पार्श्वनाथ गीत, मुनिमेरु / कलमसंयमोपाध्याय, भाषा-राजस्थानी, स्तवन, स्तवन, गा.-२, आदि-पहिरिवा खिणु चिरु चंदणु, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय

६. पार्श्वनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि सखी से रहमुच्छले कवणु, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

७. नेमिनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-पमुय देखी नेमी रथ नेमी, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

८. अजितनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-हितु अहितु विवेक विचारी लई, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

९. वाराणसी पार्श्वनाथ गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-अम्ह ची शरीरी सोगुण नही रिजवी, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

१०. जिनचन्द्रसूरि गीत, मुनिमेरु / कमलसंयमोपाध्याय, भाषा - राजस्थानी, स्तवन, गा.-२, आदि-चेतना रूपु आतमा विचारी, अ. मुनिभुवनचन्द्रजी, प्रतिलिपि विनय.

लेखन प्रशस्ति का विवरण :

तीन पत्र हैं। साइज १० x ४ है। पंक्ति लगभग ८-९ है। अक्षर २८ से ३० है और स्वर्णाक्षरों में लिखित है। यह प्रति कहाँ है मुझे स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को ध्यान नहीं है । ६० वर्ष के साहित्यिक सेवा कार्य में रहते यह लेखन प्रशस्ति की प्रतिलिपि की थी । किन्तु मुझे आज स्मरण नहीं है कि यह प्रति किस भण्डार की और कहाँ पर थी । अन्वेषणीय है । जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह (सम्पादक मुनि जिनविजयजी), कैटलॉग ऑफ संस्कृत और प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट जैसलमेर कलेक्शन (सम्पादक पुण्यविजयजी) में इसका उल्लेख नहीं है ।

॥ र्द० ॥ अर्हम् ।

सुपर्ववेलिवर्धिष्णु - र्विश्ववंशशिरोमणिः ।
श्रीमद्गुरुगिरिस्थाणु - र्जीयादूकेशवंशराट् ॥१॥
रांकाकुले श्रेष्ठिधुराधुरन्धरो - ज्जोषदे ? श्रीजिनदत्तसूरिभिः ।
सपादलक्षैस्मदनैस्समन्वित, ऊकेशपुर्यां सुकृते नियोजितः ॥२॥
तदन्वये श्रेष्ठि गजू प्रसिद्धः, पुत्रस्तदीयो गणदे समृद्धः ।
श्रीधांधलाख्योपि ततो मुमुक्षुः श्रीपद्मकीर्त्त्या प्रवरप्रसिद्धः ॥३॥
आंबा-जींदा-मूलराजा सत् पितृव्यसहोदराः ।
अर्हत्प्रतिष्ठामुच्चाया-मत्युन्नतिमकारयन् ॥४॥
शत्रुञ्जयादौ फुरमाण शक्ते-र्निःस्वानयुक्षड्त्रिचतुर्दशाब्दे (१४३६)।
यात्रा समं श्रीजिनराजसूरे-ष्टङ्कार्धलक्षव्ययतो व्यधुर्ये ॥५॥
धांधलिर्मम्मणस्तस्य, भार्या श्रीः श्रीरिवापरा ।
जयसिंह-नृसिंहाख्यौ, क्षितौ ख्यातौ सुतौ पुनः ॥९॥

तथा-

आस्तां मोहण जन्मात्सै, श्रेष्ठि कीहट-धन्यकौ ।
शत्रुञ्जयादियात्रां या-वकार्ष्टां सङ्घपत्वतः ॥७॥
ताभ्यां बन्धुभ्यां सह जेसलमेरौ विधापिता याभ्याम् ।
जैनी महाप्रतिष्ठा त्रिसप्तभुवनैर्मिते (१४७३) वर्षे ॥८॥
अभवज्जयसिंहस्य, पत्नीयुगलमुत्तमम् ।
सिरू सरस्वतीसंज्ञं, सरस्वत्याः सुतोत्तमौ ॥९॥
रूपा-थिल्लाभिधो रूप-प्रिया मेलू-चिपीद्वयम् ।
पुत्रो नाथूः सुतो त्वस्य, राजाख्य-समराभिधौ ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थिल्लाकस्य त्वभूत्कान्ता करणूः करणापरा ।
हरिपालो हरिश्चन्द्रः, पुत्रौ पुण्यपवित्रितौ ॥११॥
हरिपालात्मजो हर्ष-जिनदत्तौ शुभाशयौ ।
यशस्व्युदयसिंहाख्यो, हरिश्चन्द्रतनूद्भवः ॥१२॥
श्रेष्ठि यो(श्रेष्ठिनो?) नरसिंहस्य, भार्ये धीरिणि सुष्मती ।
धीरिणीकुक्षिजौ भोजा-हरिराजौ प्रभावकौ ॥१३॥
भार्या भावलदेवी तु, श्रेष्ठि भोजप्रियाऽभवत् ।
सुतो गोधाभिधश्चास्य, हीरा-धन्नाख्यनन्दनौ ॥१४॥
श्रीदेवगुर्वार्हतधर्मतत्त्व-पवित्रछत्रत्रयभूषिताङ्गः ।
श्रेष्ठीनृसिंहस्य सुतो द्वितीयः, स्वपक्षपोषी हरिराजदक्षः ॥१५॥
वर्या राजूश्च मेघाई, भार्ये अभवतां पुरा ।
श्रेष्ठिनो हरिराजस्य, पुमर्थत्रयशालिनः ॥१६॥

इतश्च-

परीक्षवंशशृङ्गार-मुभयेऽस्य सुतोऽभवन् ।
सद्येशः करणस्तस्य, करणादे प्रियाऽभवत् ॥१७॥
चत्वारः तनयास्तस्य, पुमर्था इव देहिनः ।
नरसिंहो महीपत्ति-वीरमः सोमदत्तकः ॥१८॥
चतस्रश्च सुतास्तासु मेघाईति तृतीयिका ।
साध्यूढा हरिराजेन, कलालावण्यमालिनी ॥१९॥
जीवाख्यो जिणदासश्च जगमालश्च तत्सुताः ।
शुद्धशीलासदाचारा मणकाईतिनन्दिनी ॥२०॥
नाम्ना कुतिगदेवीति जीवराजस्य वल्लभा ।
वल्लभा जिणदासस्य, जसमादे यशस्विनी ॥२१॥
सुखमति-प्रसूतास्तु, नरसिंहस्य नन्दनाः ।
सहस्रकिरणः सूरा, महीपतिरिमे त्रयः ॥२२॥
सहस्रकिरणस्यास्ति, अद्धा सद्धा सुतद्वयोः ।
महीपतितनूद्भूतो, वच्छराजः कुमारकः ॥२३॥
धर्मपुत्रः सुभागाख्यो, हरिराजस्य धर्मवान् ।
इत्यादि परिवर्हेणा-गर्हेणासावलङ् कृतः ॥२४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थयात्रासु सङ्घार्चा-जैनधर्मप्रभावनाः ।
कुर्वन् विराजते श्रेष्ठी, हरिराजो निरन्तरम् ॥२५॥

इतश्च-

श्रीवर्द्धमानांहिसरोजहंसः, श्रीमत्सुधर्मागणभृद्वतंसः ।
तदन्वये श्रीहरिभद्रसूरिः, प्रभापराभूतसुपर्वसूरिः ॥२६॥
शासनोद्योतकर्त्तारि, श्रीउद्योतनसूरयः ।
श्रीवर्द्धमानसूरीन्द्राः, वर्द्धमानगुणाधिकाः ॥२७॥
यैः श्रीपत्तननगरे, प्राप्तं श्री खरतराख्यवरबिरुदम् ।
दुर्लभभूपतितस्ते, जेजु-जैनेश्वराचार्याः ॥२८॥
निध्यङ्गवृत्तिमिषतः, प्रादुर्विहितानि नवनिधानानि ।
श्रीमदभयदेवार्यैः, जिनचन्द्रपदाम्बुजादित्यैः ॥२९॥
सर्वसूरिशिरोरत्नै-र्बभूवे जिनवल्लभैः ।
युगप्रधानपदवीशैः, श्रीजिनदत्तसूरिभिः ॥३०॥
ततो जिनेन्दुसूरीन्द्रा, राजपर्षदि हर्षदाः ।
श्रीजिनपतिसूरीन्द्राः, तदनु श्रीजिनेश्वराः ॥३१॥
श्रीमज्जिनप्रबोधाः, जिनचन्द्रयतीश्वराश्च कुशलकराः ।
जिनकुशलसूरिगुरवः, श्रीमज्जिनपद्मसूरिवराः ॥३२॥
लब्धाब्धयः श्रीजिनलब्धिसूरयः श्रीजैनचन्द्रादिमसूरिसूरयः ।
जिनोदयाः सर्वजनोदये क्षमाः, तदन्वये श्रीजिनराजसूरयः ॥३३॥
तदीय पट्टार्णवपूर्णिमेन्दवो, विराजि तेजोजितभास्करांशवः ।
विद्यागुणै रञ्जितसर्वसूरयो, जयन्त्वमी श्रीजिनभद्रसूरयः ॥३४॥
तेषां गुरूणामुपदेशमाप्य सत्पुत्रयुक्तो हरिराजदक्षः ।
अलीलिखच्चागमलक्षपूर्वं, सुवर्णवर्णं वरकल्पशास्त्रम् ॥३५॥
निध्यन्तरिक्षपक्षाब्दे (१५०९), लेखितं कल्पपुस्तकम् ।
विबुधैर्वाच्यमानं तदाचन्द्रं जयताच्चिरम् ॥३६॥

पं. मुनिसोमगणिना प्रशस्तिकृतोऽस्ति मङ्गलम् ॥

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
13-A. मेन मालवीय नगर, जयपुर ३०२०१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org